Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 9 | ISSUE : 11 | NOVEMBER 2023

वैदिक युग में वर्ण व्यवस्थाः- एक विवेचना

विरेन्द्र सिंह यादव [1]

[1] सहायक आचार्य, इतिहास विभाग चै. बल्लूराम गोदारा राजकीय कन्या महाविद्यालय, श्रीगंगानगर.

ABSTRACT:

प्राचीन भारतीय वैदिक युग में वर्णव्यवस्था सामाजिक जीवन का महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ थी। इस वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति किस प्रकार हुई? वैदिकयुग में इसका कितना महत्वपूर्ण स्थान था? ऋग्वैद व उत्तरवैदिक युग में मूल स्वरूप क्या था? इसमें जटिलता कितनी थी? इत्यादि प्रश्नों का हल इस प्रस्तुत विवेचना में ढूंढा जाएगा। वर्णव्यवस्था का वैदिकयुग में आधार कर्म था वहीं सूत्रकाल तक आते-आते यह जन्म पर आधारित हो गई। कालान्तर में इस वर्णव्यवस्था का स्थान समाज में जाति व्यवस्था ने ले लिया जो अत्यधिक रूढ़ व जड़ साबित हुई। वर्णव्यवस्था का आधार व्यापक था जो सरल व सहज भी थी वहीं कालान्तर में जाति व्यवस्था में जड़ता अधिक प्रलक्षित होती गई।

KEYWORDS:

वर्ण, ऋग्वेद, पुरूषसुक्त, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र, आर्य, अनार्य, जाति, जन, विश, विधि-विधान, यज्ञ, कर्मकाण्ड, चातुर्वण, दास, उत्तरवैदिक, विद्याभ्यास, सूक्त, यज्ञोपवित, उपनिषद, आरण्य, सूत्र काल।

भारत के सामाजिक इतिहास मे वर्ण व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान है, जो सामाजिक विभाजन के रूप में वैदिककाल से आज तक उत्तर से दक्षिण तक निरन्तर प्रवाहमान है। वर्ण शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'वृञ्' 'वरणे' अथवा 'वरी' धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'चुनना' या 'वंरण करना'। सम्भवतः वर्ण से तात्पर्य 'वृति' से है, किसी विशेष व्यवसाय के चुनने से। वास्तव में वर्ण उस सामाजिक वर्ग की ओर इंगित करता है जिसका समाज में विशिष्ट कार्य और स्थान है, जो अपनी इन्ही विशेषताओं के कारण समाज के अन्य वर्गो अथवा समूहों से सर्वथा अलग होता है तथा अपने हितों और स्थितियों के विषय में जागरूक होता है।

प्रस्तुत विवेचना में यह देखा जाएगा कि:-

- ऋग्वेद कालीन वर्ण व्यवस्था की स्थिति कैसी थी।
- क्या उत्तरवैदिक काल में वर्ण व्यवस्था में जड़ता आ चुकी थी या उसमे अभी भी लचीलापन कायम था।
- सूत्रकालीन वर्ण व्यवस्था की स्थिति।

ऋग्वेद के समय में भारतीय आर्य चार वर्णो में विभक्त नही हुए थे। यही कारण है कि पुरूष सूक्त के अतिरिक्त ऋग्वेद मे अन्यत्र कहीं भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्व और शुद्र चारों वर्णो का उल्लेख नहीं मिलता है। केवल पुरूष सुक्त में समाज के स्वरूप को एक शरीर के समान प्रतिपादित करते हुए चारों वर्णो का उल्लेख किया गया है।

[1]ब्राह्मणोंडस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः।

उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्य शूद्रोउआयत ।।

ऋग्वेद 20.60.12

वेद के अनुसार ब्राह्मण समाज के मुख है, क्षत्रिय भुजाएं है, वैश्य जघाएं व पेट और शुद्र पैर है। पुरूषसूक्त को प्रायः सभी आधुनिक विद्वान बाद के समय का मानते है। ऋग्वेद में अन्यत्र ब्राह्मणों[2] और क्षत्रियों[3] का उल्लेख अवश्य हुआ है पर वैश्य और शुद्र शब्द केवल पुरूषसूक्त में ही मिलता है।

वस्तुतः ऋग्वैदिक काल में समाज दो वर्णो में विभक्त था - 1.आर्य 2.अनार्य या दास। आर्य तो वे थे जो कबीलों मे विभक्त थे और इनके पांच प्रमुख कबीले थे - अनु, द्रुह, यदु, तुर्वश और पुरू। कालांतर में इनमें भरत, त्रित्सु, सृंजय इत्यादी जनों का भी मेल होता गया। आर्य जाति के प्रत्येक जन में सब व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति एक समान थी, सबको एक ही 'विशः' (जनता) का अंग माना जाता था। लेकिन धीरे-धीरे उसमे भी भेद प्रादुर्भूत होने लगा। दासों के साथ निरन्तर युद्र में व्याप्त रहने के कारण सर्वसाधारण जनता में कतिपय ऐसे वीर सैनिकों की सत्ता आवश्यक हो गई जो युद्ध कला में विशेष निपुणता रखते हों। क्षत (हानि) से त्राण करने वाले होने के कारण इनको क्षत्रिय कहा जाने लगा। इसी प्रकार जब आर्य भारत में बस गए तो उनके विधि-विधानों व अनुष्ठानों में भी बहुत वृद्धि हुई व शनैः-शनैः जटिल होते गए। इस दशा में यह स्वाभाविक था कि कुछ लोग जटिल याज्ञिक कर्मकाण्ड में विशेष निपुणता प्राप्त करे और याज्ञिकों की इस श्रेणी को सर्वसाधारण आर्य विश द्वारा क्षत्रियों के समान ही विशेष आदर की दृष्टि से देखा जाए। इस प्रकार वैदिक युग में उस चातुर्वर्ण्य व्यवस्था का विकास प्रारम्भ हो गया था जो आगे चलकर भारत में बहुत अधिक विकसित हुई और जो बाद में हिन्दू व भारतीय समाज की एक महत्वपूर्ण विशेषता बन गई।

परन्तु वैदिक युग में यह भावना होने पर भी कि ब्राह्मण और क्षत्रिय सर्वसाधारण विशः से उत्कृष्ट व भिन्न है, जातिभेद व वर्गभेद का आभाव था। कोई भी व्यक्ति अपनी निपुणता, तप व विद्वता के कारण ब्राह्मण पद को प्राप्त कर सकता था। इसी प्रकार आर्यजन का कोई भी मनुष्य अपनी वीरता के कारण क्षत्रिय व राजन्य बन सकता था। अर्थात कोई व्यक्ति ब्राह्मण या क्षत्रिय है इसका आधार उसकी योग्यता या अपने कार्य में निपुणता थी।

यद्यपि आर्य लोग दास जातियों के व्यक्तियों को अपनी तुलना में हीन समझते थे, पर उन्हें अस्पृश्य नहीं माना जाता था। कतिपय दास परिवार अच्छे समृद्ध भी थे और आर्य ब्राह्मण उनसे दान-दक्षिणा ग्रहण करने में भी संकोच नहीं करते थे। ऋग्वेद के एक मन्त्र में बल्बूथ नामक दास द्वारा एक ब्राह्मण को 100 गाये दान में दिए जाने का उल्लेख है[4]।

[2]संवत्सर शशयाना ब्राह्मणो वृन्तचारिणः' -

ऋग्वेद 6.103.1

[3]धृतव्रताः क्षत्रिया यज्ञ निष्कृतो ब्रहद्विवा अध्वराणामभिश्रियः

ऋग्वेद 20.66.5

उत्तरवैदिक कालीन वेदों के अनेक मन्त्रो में चारो वर्णो का उल्लेख है। जिससे सूचित होता है कि इन वेदों के समय में वर्णभेद भलीभांती विकसित हो चुका था। याज्ञिक कर्मकाण्डों का रूप जटिल होने व नये नये क्षेत्रों को अधिकृत करने की लालसा से क्रमशः ब्राह्मणों व क्षत्रियों की स्थिति भी सर्वसाधारण आर्य ' विश ' की तुलना में अधिक उँची हो गई। ब्राह्मणो और क्षत्रियों के अतिरिक्त जो सर्वसाधारण आर्य जनता थी उसमे सब प्रकार के शिल्पी, वणिक्, कृषक, पशुपालक आदि सम्मिलित थे और उसे ' विश ' या ' वैश्य ' कहा जाता था। समाज में जो सबसे निम्न वर्ग था और जो आर्य गृहस्थों की सेवा में दास आदि के रूप में कार्य करता था, उसे शुद्र कहा जाता था। तीनो उच्चवर्णो के बालक अपने-अपने कुलों के लिए उपयुक्त विद्या ग्रहण किया करते थे और यज्ञोपवित धारण कर ' द्विज ' बनने का अवसर प्राप्त करते थे। तैतरीय ब्राह्मण में ब्राह्मण के लिए सूत का, क्षत्रिय के लिए ऊन का व वैश्य के लिए सन का यज्ञोपवित विद्यान बताया गया है और साथ ही ब्राह्मण का बसन्त ऋतु में, क्षत्रिय का ग्रीष्म ऋतु में और वैश्य का शीत ऋतु में उपनयन होने का उल्लेख किया गया है।

पर अभी भी वर्णभेद ने न अधिक जटिल रूप ही प्राप्त किया था और न उसका आधार

पूर्णतया जन्म को ही माना जाता था। ऐसे बहुत से उदाहरण हमें मिलते है जिनसे यह प्रमाण मिलता है कि उत्तरवैदिक काल में भी वर्ण व्यवस्था बहुत कठोर नहीं थी। उदाहरणार्थ: विश्वामित्र का जन्म एक क्षत्रियकुल में हुआ थाफिर भी राजा सुदास ने ब्राह्मान वशिष्ठ के स्थान पर उसे अपना पुरोहित बनाया। अनेक ऐसे क्षत्रिय राजा थे जो अध्यात्म तथा दार्शनिक चिन्तन के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। ब्राह्मान लोग भी उनके पास जाकर इन विषयों की शिक्षा ग्रहण किया करते थे। विदेह के राजा जनक, प्रवाहण जाबालि, केकय देश के राजा अश्वपति और काशी के राजा अजातशत्रु की कथाएं उपनिषदों में विद्यमान है जिसमें इनके ज्ञान और विद्धता का उल्लेख किया गया है। श्वेतकेतु के पिता ब्राह्मण उद्धालक पांचाल के क्षत्रिय राजा प्रवाहण जाबालि के पास ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से गये थे।

उत्तरवैदिक काल में ब्राह्मण गुरू ऐसे बालकों को भी शिक्षा देने में संकोच नहीं करते थे जिनके कुल, गोत्र आदि का कुछ भी पता न हो। छान्दोग्य उपनिषद् से पता चलता है कि जब सत्यकाम जाबाल आचार्य गौतम के पास विद्याध्ययन के लिए गया तो आचार्य ने उसके पिता के संबंध में प्रश्न किया। इस पर सत्यकाम ने उत्तर दिया कि उसे न तो अपने पिता का नाम ज्ञात है और न ही अपने गोत्र का पता, क्योंकि उसकी माता परीचारिका के रूप में अनेक घरों में कार्य करती थी और तभी उसका जन्म हो गया।

[4]शत दासे बल्बूथे विप्रस्तरूक्ष आ ददे।

ते ते वायविये जना मदन्तीन्द्रगोया मदन्ति देवगोपा: ।।

ऋग्वेद 8.46.32

सत्यकाम जाबाल के कुल गोत्र का पता न होने पर भी गौतम ने उसे विद्याभ्यास कराना स्वीकार कर लिया और विधिवत् यज्ञोपवीत संस्कार कराके उसे अपना शिष्य बना लिया। ऐतरेय ब्राह्मण का कर्ता महीदास किसी अज्ञात आचार्य की शुद्र दासी इतरा का पुत्र था। इसी कारण वह ' ऐतरेय ' (इतरा का पुत्र) नाम से प्रसिद्ध हुआ, पर अपनी योग्यता व विद्वता के कारण वह समाज में अत्यन्त उच्च स्थान प्राप्त करने में समर्थ हुआ और एतेरेय ब्राह्मण की उसने रचना की। इसी प्रकार ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के अनेक सूत्रों का रचियता ऋषि कक्षीवान् भी आशिका नाम की शुद्र का पुत्र था। इस युग में विविध वर्गो में विवाह भी सम्भव था। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार महर्षि च्यवन ने राजन्य शर्याति की कन्या के साथ विवाह किया था।

इस प्रकार कितने ही उदाहरण प्राचीन अनुश्रुति में विद्यमान है जिससे स्पष्ट होता है कि वर्णभेद ने अभी ऐसा रूप प्राप्त नहीं किया था कि ब्राह्मण तथा क्षत्रिय कुलों में उत्पन्न हुए बिना आर्य ' विशः ' का कोई व्यक्ति इन वर्णो में सम्मलित न हो सके।

सूत्र ग्रन्थो के काल में वर्णभेद:-

सूत्र ग्रन्थों जिनमें श्रोतसूत्र, गृहसूत्र व धर्मसूत्र आते है के काल में वर्णभेद का और अधिक विकास हुआ। अब ब्राहमणों को उच्च वर्णो की तुलना में अधिक श्रेष्ठ माना जाने लगा। गौतम धर्मसूत्र के अनुसार राजा अन्य सबसे तो श्रेष्ठ होता है पर बा्रह्मणों से नहीं। इस युग में वर्णो का आधार जन्म हो गया था परन्तु विशेष अवस्थाओं में ब्राह्मणों को क्षत्रिय व वैश्य के कर्म भी अपनाने की अनुमति प्रदान की गई।

समाज में क्षत्रियों का स्थान ब्राह्मणों से निम्न माना गया जो जनता की रक्षा करने, शांति व्यवस्था बनाए रखने व देश का शासन करने जैसे कार्य करते थे। पर इनके लिए ब्राह्मणं वर्ग के सहयोग की आवश्यकता स्वीकार की गई। ब्रह्मा शक्ति और क्षत्रशक्ति एक दूसरे की पूरक है, यह विचार वैदिक युग में विद्यमान था।

वैश्य वर्ग के लोगों का कार्य कृषि, पशुपालन व व्यापार वाणिज्य था, पर संकट के समय शस्त्र-धारण करने की भी इनको अनुमति थी। समाज में शुद्रों की स्थिति अत्यन्त हीन थी। उनका एक मात्र कार्य तीनों उच्च वर्णो की सेवा करना था। गौतम धर्मसूत्र में कहा है कि उच्च वर्णो के लोगों के जो जूते, वस्त्र इत्यादि जीर्ण-शीर्ण हो जाए और भोजन पात्र में जो झूठन शेष बच जाए उन्हें शुद्र को दे देनी चाहिए। इस प्रकार उनकी स्थिति दासों के सदृश थी।

Conclusions-

कुल मिलाकर कह सकते है कि ऋग्वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था प्रभावी ढंग से प्रचलन में नहीं थी क्योंकि इसका उल्लेख ऋग्वेद के अन्तिम मण्डल के पुरूषसुक्त में ही मिलता है। उत्तर-वैदिक काल में वर्णव्यवस्था का आधार समाज में बढ़ने लगा, लेकिन अभी भी यह जन्म पर आधारित नहीं थी। सूत्र ग्रन्थो के काल तक आते-आते वर्णव्यवस्था ने समाज में दृढ आधार प्राप्त कर लिया जो जन्म पर आधारित थी और जिससे समाज में जड़ता आती चली गई।

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यन्चों चरत: सह।

तं लोंक पुण्य प्रज्ञेषं यत्र देवा: सहाग्निना।।

युजुर्वेद 20। 22

REFERENCES

1. सत्यकेतु विद्यांलकार- प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग
2. द्विजेन्द्रनारायण झा, कृष्णमोहन श्रीमाली - प्राचीन भारत का इतिहा।
3. सत्यकेतु विद्यालंकार - भारतीय संस्कृति का विकास।
4. दामोदर धर्मापनंद कौसाम्बी - प्राचीन भारत की संस्कृति एवं सभ्यता।
5. प्रो.बी.एन. लूणिया - भारतीय संस्कृति का विकास।
6. डॉ. ईश्वरी प्रसाद - प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला, राजनीति धर्म तथा दर्शन।
7. डॉ. वी.के. पाण्डेय - प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति तथा दर्शन।
8. डॉ. मनोज कुमार शुक्ला- प्राचीन भारतीय सभ्यता व संस्कृति।
9. आर.शरण-प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरात्तन।
10. डॉ. पृथ्वी कुमार अग्रवाल- भारतीय संस्कृति की रूपरेखा।